बुन्देलखण्ड के गौरव स्वर्गीय पं० घासीराम जी 'व्यास' की
पुण्यस्मृति में

खरखी

•

(राष्ट्रीय, सामाजिक तथा प्राकृतिक पद्य-संग्रह)

—रामचरणलाल हयारण 'मित्र'

स्वरसी

लेखक

श्री रामचरणलाल ह्यारण 'मित्र'

भूमिका-लेखक

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

•

मित्र-निवास

झांसी

प्रकाशक
'मयूर-प्रकाशन'
स्वाधीन प्रेस
झांसी

दिसम्बर १९४६
मूल्य· २)

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

निवेदन

'सरसी' साहित्य-प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित है। इसकी कुछ रचनाएँ आज से पाँच वर्ष पूर्व ही तैयार हो गई थीं और सौभाग्यवश तभी इसका नामकरण भी बुन्देलखण्ड-गौरव स्व० श्री घासीरामजी 'ब्यास' द्वारा हो गया था। खेद है 'व्यास' जी आज हमारे बीच में नहीं हैं, पर उनका आशीर्वाद तो हमारे साथ है ही।

'सरसी' की कविताओं को कसौटी पर तो साहित्य-मर्मज्ञ ही कसेंगे, पर मैं एकाध बात इन कविताओं के सम्बन्ध में कह देना चाहता हूं। मेरा अपना मत कभी भाषा और भाव के बन्धनों को स्वीकार करके नहीं चला है और इसीलिये मेरा अनुमान है कि मैं काव्यक्षेत्र में विद्यमान आज के विभिन्न वाद-वर्गों में से किसी में भी नहीं आता। बुन्देलखण्ड के प्राकृतिक सौन्दर्य से मुझे प्रेरणा मिली है और उसी के फ़लस्वरूप बुन्देल-खण्ड की कई एक नदियों का यशोगान 'सरसी' में है। राष्ट्रीयता ने भी मेरे मन में तूफ़ान के क्षण पैदा किये हैं और उन क्षणों में मैंने 'सरसी' के लिये कतिपय पुष्प सँजोये हैं। सामाजिक और आर्थिक विषमताओं ने मेरे मन में हाहाकार मचाया है और इस हाहाकार-क्रन्दन में ही 'सरसी' की कुछ लघु लहरियों का निर्माण हुआ है।

जिस तरह भाव-स्वतंत्रता 'सरसी' में है उसी तरह भाषा के संबन्ध में भी मैंने पूरी स्वतंत्रता से काम लिया है। पाठक देखेंगे कि 'सरसी' में ब्रजभाषा, बुन्देलखण्डी और खड़ीबोली सभी का प्रयोग हुआ है और मैं समझता हूं कि यह प्रयोग बेजा नहीं है और न वह पाठकों को खलेगा ही।

अपनी प्रथम कविता-पुस्तक 'भेंट' के बाद 'सरसी' तक मेरी कितनी

प्रगति हुई है, इसका अनुमान तो मैं लगा नहीं सकता, किन्तु यह देख कर मुझे प्रसन्नता है कि मित्रों ने 'सरसी' को 'भेंट' से कुछ आगे बढ़ा पाया है।

'सरसी' के भूमिका-लेखक पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी, कवीन्द्र नाथूराम माहौर और भाई यशपाल जैन बी० ए०, एल-एल० बी० का मैं हृदय से कृतज्ञ हूं। जिन्होंने समय-समय पर मुझे प्रोत्साहन और अपना पूर्ण सहयोग दिया। साथ-ही अपने अभिन्न मित्र श्री कालीचरणजी चित्र-कार का भी मैं बहुत ही आभारी हूं, जिन्होंने 'सरसी' का इतना सुन्दर और कलापूर्ण चित्र बनाकर पुस्तक की शोभा बढ़ाई है।

मित्र-निवास
झाँसी

—रामचरणलाल हयारण 'मित्र'

भूमिका

मनुष्यों की रुचि और आदर्शों में परिवर्तन होते रहते हैं और जो जितना ही अधिक सजीव तथा प्रगतिशील होता है, उसकी भावनाओं में उतना ही अधिक परिवर्तन अनिवार्य है। साहित्य-प्रेमियों की भी रुचि उसी प्रकार बदलती रहती है। जब हम अपने साधारण जीवन के पिछले चौंतीस-पैंतीस वर्षों की साहित्यिक रुचि के विकास को देखते हैं तब हमें स्वयं आश्चर्य होता है। यह प्रश्न रुचि के उन्नत अथवा अवनत होने का नहीं है, वरन् उसकी दिशा-परिवर्तन का ही है। महान तथा दूरस्थ के प्रति हमारे हृदय में वह आकर्षण नहीं रहा, जो तथाकथित 'लघु' और निकटस्थ के प्रति हो गया है। अब हमारी आकांक्षा महान की छानबीन की नहीं रही, बल्कि 'लघु' में महत्त्व के दर्शन की हो गई है। भगवान् ने गीता में कहा है कि लोग श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण का अनुगमन करते हैं। आज के साहित्य-सेवी का कर्तव्य है कि वह यह प्रमाणित कर दे कि आचरणों की यह श्रेष्ठता केवल विज्ञापित महापुरुषों में ही नहीं, वरन् साधारण जनता के सद्गृहस्थों में भी पाई जाती है।

अखिल भारतीय कवियों की गगन-चुम्बी कीर्ति अब हमें आकर्षित नहीं करती। यद्यपि अब भी वे हमारे लिए श्रद्धेय हैं और उनकी रचनाएँ हमें आनन्द भी प्रदान करती हैं तथापि हमारी पूजा के तुच्छ पुष्प उनके मन्दिरों के लिए नहीं हैं—वहाँ पुजारियों के जमघट में उनकी क़द्र भी कौन करेगा? हमारी वास्तविक भक्ति है जनपदीय कवियों में और यदि हमारे पास समय होता तो हम उन्हीं की रचनाओं के विधिवत् अध्ययन में उसे व्यतीत कर देते।

बुन्देलखण्ड में हमारी श्रद्धा की पात्र रही है एक त्रिमूर्ति—स्वर्गीय

घासीराम जी व्यास, रामचरणलाल जी हयारण 'मित्र' और हरगोविन्द जी गुप्त। इसका कारण यह नहीं है कि इस कवित्रयी की रचनाएँ अखिल भारतीय यश-प्राप्त सुप्रसिद्ध कवियों की टक्कर की होती है (वैसे 'व्यास' जी की कीर्ति तो जनपदीय सीमा का उल्लंघन कभी का कर चुकी थी), बल्कि जैसा कि हमने ऊपर कहा था, हमारी मनोवृत्ति में ही अन्तर हो गया है। हमारा दृष्टिकोण ही बदल गया है।

मसूरी से हमने हिमालय की दूरस्थ उपत्यकाओं तथा हिम-चुम्बित शिखरों के दर्शन किये थे, पर हमें आत्मिक तृप्ति मिली है विन्ध्याचल की छोटी-मोटी टोरियों पर भ्रमण करते हुए। हिमालय सदा आराध्य रहेगा और कवीन्द्र रवीन्द्र जैसे कवि भी अनन्त काल तक श्रद्धा के पात्र रहेंगे, पर उनकी ऊँचाई हमारे जैसे साधारण मानव के मन में भय-मिश्रित आश्चर्य ही पैदा करती रहेगी। उनके साथ हमारी वह आत्मीयता नहीं हो सकती, जो आस-पास की हरी-भरी पहाड़ियों से हो सकती है। जहाँ रवीन्द्र की प्रखर प्रतिभा हमारी आँखों में चकाचौंध ही उत्पन्न कर सकती है, वहाँ मित्रवर 'मित्र' की कोमल रश्मियों के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए प्रकाश को कुछ देर तो हम टकटकी लगा कर देख ही सकते हैं।

वस्तुतः वह युग अब आने ही वाला है, जब हमारे जीवन के दर्शनशास्त्र में आमूल परिवर्तन हो जायगा। बड़ी-बड़ी मिलों के बजाय चरखे की ओर ध्यान जाना उसी परिवर्तन का सूचक है, केन्द्रीकरण के स्थान पर विकेन्द्रीकरण का प्रचार उसी बदली हुई मनोवृत्ति का परिचायक है और साहित्य-क्षेत्र में जनपदीय आन्दोलन उसी प्रगतिशील विचार-धारा का जीता-जागता प्रमाण है। क्या परमाणु बम के इस युग में भी अणुओं की महिमा को प्रमाणित करने की ज़रूरत बाक़ी रह गई है? अब साहित्य-क्षेत्र में भी वह दिन आ ही रहा है जब हम लोग 'टका में टका और धका में धका' की नीति को तिलाञ्जलि देकर 'दरिद्रान भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरेधनं' भगवान के इस आदेश का पालन करेंगे। देश में स्वाधीनता

के युग के प्रारम्भ होते ही जन-साधारण स्थानीय वस्तुओं, जनपदीय कवियों और लेखकों तथा अपने आस-पास के प्रश्नों को उचित महत्त्व देना सीख जायँगे। संक्षेप में यों कहिए कि अब हमारी श्रद्धा-पात्र त्रिमूर्ति का और उनके समानशीलों का युग आ रहा है।

इस त्रिमूर्ति की हम वन्दना करते हैं। दुःख की बात है कि उनमें सर्वश्रेष्ठ कविवर घासीराम जी व्यास का केवल यशःशरीर ही इस लोक में विद्यमान है, पर बन्धुवर 'मित्र' जी तथा भाई हरगोविन्द जी के सम्मुख विस्तृत कार्य-क्षेत्र पड़ा हुआ है और ईश्वर करे वे दोनों शतायु हों। इस भूमि को उन जैसे सैकड़ों-सहस्रों कवियों तथा कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है।

वह दिन हमें अभी भी याद है जब हमारे निवास-स्थान पर ही पधार कर कविवर व्यास जी ने अपनी काव्य-गंगा की पवित्र धारा में हमें स्नान कराया था। उनकी वे पंक्तियाँ हमारे कानों में अब भी गूँज रही हैं :

केन कलिन्दजा-सी गिरि-भूमि पै, पावन प्रेम पसारती आई।
रोका जहाँ जिसने पथ को, उसके वहीं पैर उखारती आई॥
वीर-व्रता कर्तव्यरता बन, भैरवनाद हुँकारती आई।
टारती आई विपत्तियों को, महापर्वतों का उर फारती आई॥

श्री हरगोविन्द जी कवि ही नहीं, कार्यकर्त्ता भी हैं और आज कल तो वे 'गणेशशङ्कर-हृदयतीर्थ' की रचना में संलग्न हैं। वह चीज़ जब बन कर तैयार होगी तो किसी महाकाव्य का मुक़ाबला करेगी। जब 'मित्र' जी बेतवा को श्रद्धांजलि चढ़ाते हुए कहते हैं :

धन्य-धन्य विमल बुँदेल की वसुन्धरा है,
जहाँ बेतवा की यशधारा लहराती है।

तुंगारण्य तीर तुंग तरल - तरंगिनी की,
बूँद - बूँद कोविद कवीन्द्र प्रगटाती है ।
स्वर लहरी के ताल - ताल में प्रवीनराय,
मित्र - रश्मियों के साथ थिरकत आती है ।
स्वर्ण दान धारा बन जाती वीरसिंह जू की,
वही छत्रसाल का दुधारा बन जाती है ।

तो मन में यही भाव जाग्रत होता है कि इस वसुन्धरा के हम कितने ऋणी हैं । हमारा रोम-रोम हमारी विपत्तियों के आश्रय-स्थल—इस जनपद—के अन्न-जल का ऋणी है और यहाँ का क्षुद्र-से-क्षुद्र व्यक्ति भी हमारे लिए अभिनन्दनीय है ।

कविवर 'मित्र' जी आज पिछले छब्बीस वर्षों से सहस्रों व्यक्तियों को अपने मधुर कण्ठ से अपनी ओजस्वितापूर्ण रचनाएँ सुनाते आ रहे हैं । हम भी सन् १९३५ से उनकी कविताएँ सुनते आ रहे हैं । उसी वर्ष जब कुण्डेश्वर में कवि-सम्मेलन हुआ था, उनकी बेतवा विषयक कविता हमने पहले-पहल सुनी थी और तभी उनके प्रथम दर्शन किये थे । उसके बाद तो अनेकों बार साथ रहने के अवसर हमें मिले हैं और हमने 'मित्र' जी के स्वभाव तथा व्यक्तित्त्व का भलीभाँति अध्ययन किया है । हम यह बात निस्सङ्कोच कह सकते हैं कि 'मित्र' जी के कवित्व से उनका मनुष्यत्व कहीं ऊँचा है । हम उनका सम्मान किसी महाकवि के रूप में नहीं करते, बल्कि उन्हें उस भावी युग का प्रतीक मानते हैं, जिस में श्रम और काव्य का सामञ्जस्य स्थापित हो सकेगा । अभी उस दिन उनकी रचना 'तिनके की कहानी' सुन कर बड़ा आनन्द आया । भूमिका का यह छन्द ध्यान देने योग्य है :

सपने नहीं प्रेम के बुन्द झरें, कहते मुख से हैं सदा कटुबानी ।
धरते नहीं पैर सुमारग में, चलने की कुमारग में हठ ठानी ।।

प्रिय 'मित्र' की बात सुनें न गुनें, करते रहते अपनी मनमानी।
तन के मद में जो तने ही रहें, तिनके लिए है तिनके की कहानी ॥

और फिर निम्नलिखित पद्य के प्रसाद-गुण पर भी ध्यान दीजिए :

अपने भर उज्ज्वल अंचल में, कुछ ले गई बेतवा की प्रिय धारा।
करने लहरों से लगा अठखेलियाँ, मोद में डूबा हुआ नहीं न्यारा ॥
दिन में प्रिय 'मित्र' की रश्मियों से, चमका निशिमें शशि-बिम्ब के द्वारा।
व्रत सेवा का भूला नहीं क्षण को, बना डूबते को तिनके का सहारा ॥

इस संग्रह की प्रायः सभी रचनाएँ हमने 'मित्र' जी के मुख से सुनी हैं और कई को बार-बार सुना है। कुछ पंक्तियाँ तो बड़ी लाजवाब बन पड़ी हैं। यथा :

जिसने मर मिटना सीखा है,
उसने सदा अमरता पाई।

कितने महत्त्व की बात किस सादगी के साथ कह दी गई है! अभी उस दिन एक साहित्य-प्रेमी मित्र की विदाई के अवसर पर जब उन्होंने अपना निम्नलिखित छन्द पढ़ा तो उपस्थित जनता ने यही समझा कि शायद यह छन्द विशेषतः इसी अवसर के लिये लिखा गया है!

विश्व बीच विधि का विधान है बड़ा विचित्र,
सत्य पथगामी ठुकराये यहाँ जाते हैं।
'मित्र' गिरि निर्झरों के शोभा सुखधाम मृग,
मोह रूपी पाश में फँसाये यहाँ जाते हैं।
सरस रसाल फल राशि ले के झूमते जो,
बज्रमार धरणि गिराये यहाँ जाते हैं।
प्रेम का पराग मधुहास ले के फूलते जो,
वही फूल धूल में मिलाये यहाँ जाते हैं।

जो बात हम वक्ता लोग अपने विस्तृत व्याख्यानों में नहीं कह सके, उसे एक छन्द में ही 'मित्र' जी ने बड़ी ख़ूबी से कह सुनाया !

जब 'मित्र' जी कोकिल से प्रार्थना करते हैं :

मद से ये छके हुए लोचनों से, हिय के छिपे भेद को खोल न देना।
सुख-स्वर्ण की राशि भरी हुई का, तू कहीं किसी से कर मोल न देना।
अपने कल-कण्ठ को साध अरी, स्वर से तू 'कुहू'-'कुहू' बोल न देना।
मधुरे ! अपनी प्रिय माधुरी का, कलियों में अरी, मधु घोल न देना।

और जब वह उनकी प्रार्थना को न मान कर 'कुहू'-'कुहू' बोल ही देती है, उस समय 'मित्र' जी का उलाहना सुन लीजिए :

मृदु भाषिनी मानी नहीं पल को, तू रसाल के डाल कुहू-कुहू बोली।
बहने लगी पौन सुगन्ध सनी, वह चौकड़ी भूली कुरंग की टोली।
कर में लिए गागरी मुग्ध खड़ी, तट पै युगयाम से भामिनी भोली।
वह दौड़ी पराग को भृङ्गावली, कलियों ने सुमादक आँख है खोली।

'मित्र' जी की 'सरसी' में भिन्न-भिन्न भावों और रंगों के कितने ही पुष्प खिले हुए हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य के वे बड़े प्रेमी हैं और बुन्देलखण्ड की नदी माताओं के प्रति उनके हृदय में अनन्य श्रद्धा है। इस विषय में हमारी और उनकी रुचि का पूर्ण मेल है। 'कलौ वेत्रवती गंगा' के उद्‌गम स्थान की तीर्थ-यात्रा हमने की थी और माता जमड़ार की गोद में अठ-खेलियाँ करना हमने यहीं छयालीसवीं वर्ष में सीखा था। क्या ही अच्छा हो यदि कभी 'मित्र' जी जैसे बन्धुओं की मण्डली के साथ भारत की अन्य नदियों की तीर्थ-यात्रा का अवसर हमें मिले !

'मित्र' जी ने अपनी कविताओं में कई भावों को बड़ी ख़ूबी के साथ उतारा है। जब वे अत्याचार-पीड़ित विधवा के मुख से कहलाते हैं :

नर किन्तु हृदय को थाम ज़रा, मन के दर्पन को साफ़ करें।
ख़ुद अपनी चरित-हीनता का, कुछ न्यायोचित इन्साफ़ करें।

क्या भूल गई है सृष्टि चतुर, चतुरानन की वह पाप कथा।
सुरपति औ' विश्वामित्र आदि, ऋषियों की लिप्सामयी व्यथा ?
वृन्दा के साधन का खण्डन, वह सती अहल्या का क्रन्दन।
है हृदय विदारक सीता का, वह अग्नि परीक्षा का बन्धन।

उस समय हम उनके सात्त्विक क्रोध का अनुमान कर सकते हैं। क्रान्ति के अग्रदूत श्रमजीवी ही भावी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करेंगे, 'मित्र' जी ने इस सत्य को बड़ी ख़ूबी से अपनी 'नींव के पत्थर' नामक कविता में प्रकट किया है :

उन्नत भाल देश का करने लिए हथेली पर अपना सर।
तर कर-कर वह हृदय-रक्त से जमा रहा था नीं के पत्थर।

जब 'मित्र' जी उसके मुँह से निम्नलिखित बात कहलाते हैं तो तबीयत फड़क उठती है :

मेरी इस बलिदान शिला पर, दीन राष्ट्र का दुर्ग उठेगा।
अरुण पताका फहराने को, पीड़ित शोषित वर्ग उठेगा।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'मित्र' जी स्वयं श्रमजीवी रह चुके हैं और अब भी उनके हाथ की हथौड़ी पीतल की चद्दर में से हंडा, भगौना, कँसैड़ी, गगरा, इत्यादि बर्तनों का निर्माण करती रहती है।

इधर 'मित्र' जी का हथौड़ा अपना काम करता रहता है—पात्र-निर्माण—और उधर उनका मस्तिष्क अबाध गति से छन्द-निर्माण करता जाता है ! यह दुहरी सृष्टि 'मित्र' जी की श्रमजीवी प्रतिभा की अद्भुत विशेषता है। 'मित्र' जी की सर्वोत्तम रचनाएँ हथौड़े से पीतल के बर्तनों का निर्माण करते हुए ही लिखी गई हैं।

दुकान पर बिक्री करते हुए उनके हृदय में भाव उठते ही नहीं ! और उठें भी कैसे, जब कि कविता क्रय-विक्रय की वस्तु है ही नहीं ! 'मित्र' जी के चरित्र की यह ख़ूबी है कि उन्होंने कविता को अपने जीवन-

निर्वाह का साधन नहीं बनाया। उनकी इस स्वावलम्बन की प्रवृत्ति ने उन्हें स्वाभिमान प्रदान किया है और साथ ही व्यवहार-बुद्धि भी। सुप्रसिद्ध अमरीकन लेखक थोरो ने एक जगह लिखा था, "क्या ही अच्छा हो यदि लेखक लोग लकड़ी चीरना सीख लें! हाथों से कुछ श्रम करने पर उनकी लेख-शैली के अनेक दोष दूर हो जावेंगे।" यदि हिन्दी के वे लेखक और कवि, जिनकी रचना में छाया का ही भाग अधिक रहता है और प्रकाश का बहुत कम, साल-दो साल 'मित्र' जी की शागिर्दी में थाली और लोटे बनाना सीख लें तो उनका तो हित होगा ही, लाखों निरपराध पाठकों की भी फ़ालतू चीज़ों से—अधपके विचारों तथा पिलपिली भावुकता से—रक्षा हो जायगी। एक बार 'मित्र' जी ने हमारे आश्रम के अनेक व्यक्तियों को नाना प्रकार के लोटे प्रदान किये थे, जिनमें एक बेपैंदी का लोटा अब भी विद्यमान है! हमें अब शक होता है कि 'शुद्ध' साहित्य-सेवियों को उस लोटे के दान में 'मित्र' जी ने कहीं व्यङ्ग-अलङ्कार का तो प्रयोग नहीं किया! सच बात तो यह है कि जो भी साहित्य-सेवी शारीरिक श्रम नहीं कर सकता वह बेपैंदी के लोटे के समान है। हमें उस लोटे को देख कर अपने श्रम-विहीन हाथों पर लज्जा आती है। इसलिए 'मित्र' जी के उस पात्र को हम अपने से कहीं अधिक सुपात्र को भेंट कर देना चाहते हैं! भगवान वेदव्यास ने एक जगह लिखा है, "जिनके हाथ हैं वे क्या नहीं कर सकते?" वे लोटे भी बना सकते हैं और कविता भी, और दोनों एक दूसरे से बढ़िया! दर-असल 'मित्र' जी ने व्यास जी के 'पाणिवाद' को व्यावहारिक तौर पर समझा है।

'मित्र' जी रुपया कमाने के लिए कविता नहीं करते। अपनी पिछली पुस्तक की साढ़े तीन सौ प्रतियाँ उन्होंने अधिकारी व्यक्तियों को भेंट कर दीं और अपनी इस पुस्तक से भी अर्थ-प्राप्ति की आशा नहीं रखते। सन् १९२० से जितने श्रोताओं को वे अपनी कविताएँ सुना चुके हैं यदि उनकी संख्या जोड़ी जाय तो कई लाख पर तो वह पहुँचेगी! पपीहा

बोलता है, कोकिल 'कुहू-कुहू' करती है और 'मित्र' जी कविता का पाठ । तीनों किसी पुरस्कार के उद्देश्य से ऐसा नहीं करते । 'मित्र' जी को विदाई के लिए झगड़ा करते कभी किसी ने नहीं देखा । श्रमजीवीपन, सेवा-भावना और कवित्व-शक्ति का ऐसा विचित्र सम्मेलन दुर्लभ है । बुन्देल-खण्ड-प्रान्तीय सम्मेलन पर 'मित्र' जी सर्वत्र विद्यमान नज़र आते थे, कहीं अतिथियों का सामान उतारते हुए, कहीं कमरे साफ़ करते हुए, कहीं फर्श बिछाते हुए, कहीं भोजन परोसते हुए और फिर मधुर कविता का पाठ करते हुए भी !

अभी उस दिन जब राष्ट्रपति जवाहरलाल जी का झाँसी में आगमन हुआ था तो झाँसी वालों ने उन्हें तौलने का निश्चय कर लिया था । 'मित्र' जी को यह बात बड़ी बेतुकी मालूम हुई । उन्होंने प्रबन्ध-कर्ताओं से निवेदन भी किया कि यह चीज़ हमें भौंड़ी जँचती है, पर उस नक़्क़ारखाने में उनकी आवाज़ कौन सुनता ! सौभाग्यवश विद्यार्थी-कांग्रेस, झाँसी के सदस्यों ने 'मित्र' जी के पास आकर अभिनन्दन-पत्र लिखने का आग्रह किया । 'मित्र' जी ने उस अवसर से लाभ उठा कर अपनी बात किस चतुरता के साथ कही, वह सुनने योग्य है । 'मित्र' जी ने अभिनन्दन-पत्र पढ़ना आरम्भ किया :

दीन-हीन आरत भारत की, तुम हो अमर कहानी ।
तुमने भर दी कृशित जनों में फिर से नई जवानी ।

स्वागत देख जवाहर नाहर का भारत माँ बोली,
"भारतवासी, बुद्धिप्रवरता आज तुम्हारी तोली ।

आबदार उज्ज्वल मोती का लाल जवाहर बाँका ।
भोली भारत जनता ने सोने-चाँदी से आँका ।

इन्हें चाहिए नहीं अरे, सोने-चाँदी की थैली ।
इन्हें चाहिये वीर लिये हों, अपना शीश हथेली ।..."

जवाहरलाल जी को यह भाव बहुत ही पसन्द आया और उन्होंने कड़क कर कहा, "ठीक"। 'मित्र' जी मनोविज्ञान के अच्छे ज्ञाता प्रतीत होते हैं। उन्होंने कविता को वहीं समाप्त कर दिया। इतनी सामयिक और बढ़िया दाद और ऐसे विश्वविख्यात महापुरुष से ! कहने की आवश्यकता नहीं कि तौलने की फ़ालतू बात जहाँ-की-तहाँ ख़तम हो गई।

एक गुण 'मित्र' जी में और भी पाया जाता है, जो आज हिन्दी-जगत् में प्रायः दुर्लभ हो रहा है, यानी कृतज्ञता। द्विवेदी जी को हिन्दी-संसार भूल गया, गणेश जी को अब कौन याद करता है—उन गणेश जी को, जिनका व्यक्तित्व जवाहरलाल जी से भी ऊँचा था और जिन गणेश जी की मृत्यु से महात्मा जी भी ईर्ष्या करते हैं ! मुन्शी अजमेरी जी का काव्य-संग्रह अभी तक नहीं छप पाया और श्रीधर पाठक को लोग कभी का भूल चुके। जिस कृतघ्न हिन्दी-संसार में श्राद्ध-भावना ही विलीन हो रही हो, वहाँ 'मित्र' जी जैसे कृतज्ञ व्यक्तियों का दम ग़नीमत है। यदि स्वर्गीय घासीराम जी 'व्यास' की स्मृति-रक्षा की किसी को चिन्ता है, तो केवल उन्ही को।

यूँ तो मुँह देखे की होती है मुहब्बत सबको,
मैं तो तब जानूँ मेरे बाद मेरी याद रहे।

सो 'मित्र' जी को स्वर्गीय व्यास जी का निरन्तर स्मरण रहता है। स्वर्गीय मुन्शी अजमेरी जी की स्मृति-रक्षा के लिए भी वे चिन्तित हैं।

'मित्र' जी ने ये गुण अपने स्वर्गीय पिता जी से विरासत में पाये हैं। वे बड़े काव्य-प्रेमी थे—उन्हें सैकड़ों ही कवित्त कण्ठाग्र थे और साथ ही वे कवियों का बहुत सम्मान भी करते थे, यद्यपि वे स्वयं कवि नहीं थे। सौभाग्यशाली हैं वे पिता, जो अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति अपनी सन्तान में पाते हैं और इस दृष्टि से स्वर्गीय जगन्नाथ प्रसाद जी अत्यन्त सौभाग्य-

शाली थे । 'मित्र' जी ने स्वर्गीय पिता जी की स्मृति में इस ग्रन्थ को समर्पित करके सर्वथा उचित कार्य ही किया है ।

एक बात हमें कभी-कभी बहुत खटकती है । वह यह कि जो व्यक्ति अपनी ओजस्वी कविताओं द्वारा सहस्रों-लक्षों मनुष्यों को आनन्द तथा स्फूर्ति दे सकता है और जो कवि-दंगलों तथा कवि-गोष्ठियों में समान रूप से अपनी धाक जमा सकता है, उसे झाँसी के बर्तन-बाज़ार में बैठे-बैठे बर्तन बेचने पड़ते हैं ! क्या ही अच्छा हो कि कम-से-कम वसन्त ऋतु में तो कांग्रेसी सरकार बर्तन-बाज़ार बन्द कर दे और 'मित्र' जी को देश के भिन्न-भिन्न भागों का भ्रमण करने के लिए बाध्य करे ! 'मित्र' जी अभी कुल जमा बयालीस वर्ष के हैं । ईश्वर करे कि उनके जीवन में कम-से-कम अट्ठावन बसन्त और आवें और बुन्देलखण्ड का यह कोकिल अपने मधुरस्वर से काव्य-कानन को निरन्तर गुंजायमान करता रहे ।

कुण्डेश्वर
टीकमगढ़

—बनारसीदास चतुर्वेदी

आशीर्वाद

पूज्य महामना पं० मदनमोहन मालवीय

'सरसी' की रचनाएँ सुनीं। कवि के स्वरों से और कविता के राष्ट्रीय भावों से मेरे हृदय को सुख और शान्ति मिली। मैं आशा करता हूं कि साहित्य-संसार 'मित्र' जी की 'सरसी' का हृदय से स्वागत करेगा।

हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी
१-७-४६

राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त

'सरसी' के रचयिता की प्यास जैसे बुझती ही नहीं! बात यह है कि वह अकेले अकेले ही रस नहीं पीता। मित्रभाव से हम सब को भी पिलाता है। राम करे, यह क्रम लगातार चलता रहे।

चिरगांव
नवरात्र, २००३

स्व० श्री जगन्नाथ प्रसाद हयारण

समर्पण

जिन्होंने मुझे कविता करने की
प्रेरणा दी और मेरे कवि
का पोषण किया उन
स्व० पूज्य पिताजी
के पाद-पद्मों
में सादर
समर्पित

—'मित्र'

रचना-सूची

रचना	पृष्ठ

सरसी

वाणी-वन्दना

माँ वाणी तेरे चरणों में
कवि सुमन चढ़ाने को आया।
नीरस कविता के गीतों को
रसमय सरसाने को आया।

तव मन्दिर के हूँ द्वार खड़ा,
मैं अप्रभ कल्पना थाल लिए।
युग-युग की विस्मृति सुस्मृति-सी
बिखरी सुषमा की माल लिए।

लघु लघु-तम मुक्ता-भावों से
तव हंस चुगाने को आया। माँ वाणी—

जग व्यथित वेदना-भारों से,
अन्यायी अत्याचारों से।
पग-पग पर है प्रतिबन्ध कड़ा
ध्वनि आती कारागारों से।

दुखियों के करुणा-क्रन्दन का
सन्देश सुनाने को आया। माँ वाणी—
मृतकों में जीवन-ज्योति भरूँ
ज्योतिर्मयि ! दो वरदान मुझे।
अग-जग का मैं कल्याण करूँ
कल्याणी दो अभिज्ञान मुझे।

रीते मानस में प्रतिभा का
कल कंज खिलाने को आया। माँ वाणी—
दो शक्ति-प्रदायनि, शक्ति मुझे
माँ, दो स्वतंत्रता-भक्ति मुझे।
कण-कण अणु-अणु का ध्यान धरूँ
कर दो अनन्य अनुरक्त मुझे।

वाणी-बल से निर्बल जन का
मैं भाग्य जगाने को आया। माँ वाणी—
प्रकटा दे राणा, वीर शिवा,
मेरी कविता का वर्ण-वर्ण।
गृह-गृह में दुर्गा, लक्ष्मी, औ'
अगणित हों दानी वीर कर्ण।

मैं देश-प्रेम की, विश्व बीच,
प्रिय ज्योति जगाने को आया। माँ वाणी—

आह्वान

कवि के हृदय बीच उठती उमंग देख

उपमा अनूठी मन मोद भरने लगी।

कल्पना की कलित कलिन्दजा कलोलित हो

कल-कल नाद मुक्तावलि झरने लगी।

'मित्र' स्वर्ण-थाल अलंकार का सजा के उषा

प्रतिभा प्रसार अज्ञ-तम हरने लगी।

भावना के जागते ही कर की कलम जागी

वाणी, वर वाणी पर नृत्य करने लगी।

कवि १

कवियों की कल्पना प्रकाशमयी वाणी सुन

अधम उलूक उडुगण लजने लगे।

त्रिविध सुगन्ध सनी बहने समीर लगी

शुक, पिक, कोकिलों के कण्ठ मँजने लगे।

'मित्र' मन मोद मान पुण्य पल्लवों की गोद

स्वर्ण रश्मियों से मंजु पुष्प सजने लगे।

वीणा-धारिणी के कंज कोमल करों में वर–

वीणा के सुरीले तार तार बजने लगे।

कवि २

कवियों की कल्पना उमग उठती है जब
पल में पहाड़ को भी धूल बना देती है ।
होकर प्रचण्ड दौड़ती है समराङ्गण में
कायरों को सिंह समतूल बना देती है ।

झूठ मत मानो 'मित्र' विटप बबूल को भी
कल्पतरु-सा ही सुखमूल बना देती है ।
करुणा की करुण-कहानी कहती है जब
वज्र हृदयों को मृदु फूल बना देती है ।

कवि २

जहाँ 'मित्र'-रश्मि का प्रकाश कुछ होता नहीं
वहाँ कवि-भाव का प्रभात सरसाता है।
जहाँ चित्रकार की न तूलिका चढ़ाती रंग
वहाँ कवि मोदमयी मूर्ति को सजाता है।

विह्वल जो हृदय-सरोवर हो वेदना से
वहाँ सुख-शान्ति रूपी कमल खिलाता है।
सृष्टि-निर्माता है विधाता यदि विश्व बीच
कवि भी तो विधि के विधान का विधाता है।

कवि ४

कण को सुमेरु कर देते दृष्टि डालते ही

दृग फेर मेरुं धरा-धूल में मिलाते हैं।

'मित्र' मण्डली में मानते हैं स्वर्ग सौख्य सदा

तूलिका से तिल कर ताड़ दिखलाते हैं।

तृण कर देते पवि, पवि कर देते क्षार,

क्षार में भी फूल छवि वृन्त पै खिलाते हैं।

नर की, नरेश की, बिसात क्या है, बात क्या है,

कवि पाकशासन का आसन हिलाते हैं।

३

तुलसीदास

तुम हो माँ वाणी के रक्षक,
तुम हो कवियों के अधिनायक,
हिन्दी के प्रथमाचार्य तुम्हीं
तुम प्रभु-प्रभुता के गुण-गायक।

लिख अमर लेखनी से तुमने
भारत का भाग्य-विधान दिया।
दर्शन-पर्शन का ज्ञान दिया
मानवता का वरदान दिया।

अक्षर-अक्षर में भरा देव!
तुमने अक्षय कल्याण-ज्ञान।
प्रिय वाणी को सम्मान दिया
अभ्यन्तर का ध्रुव दिया ध्यान।

जीवन क्या है, क्या है मरना
उन्नति क्या है, क्या घोर पतन।
है एक कारिका में दर्शित
कर दिया आपने योग-यतन।

फिर भी हे कवि, नहिं समझ सके
हम राम-राज्य की परिभाषा।
पद-पद पर पीड़ित करती है
पद-लोलुपता की अभिलाषा।

हम रामायण के पृष्ठों को
नित उलट-पलट पढ़ जाते हैं।
फिर भी निषाद-प्रिय राम प्रीति का
पाठ सीख नहिं पाते हैं।

है लिखा अस्थियाँ देख राम
प्रण करके भुजा उठाते हैं।
हम अस्थि-पञ्जरित देश देख
नित हँसते हैं, इठलाते हैं।

वह शत्रु विजय के लिये मनुज,
कपि, भालु, संगठित करते हैं,
हम मत-भेदों से छिन्न-भिन्न
नित दम्भ-द्वेष में मरते हैं।

हम कुछ चाँदी के टुकड़ों पर
बिक जाते हैं; मिट जाते हैं।
निज स्वार्थ-साधना में रत हो
भाई का गला फँसाते हैं।

हम भूले जग की साध, साधु
कहलाने भर का है दावा।
मन्दिर भूले, गिरजा भूले,
हा मातृभूमि, भूले काबा।

नित प्रति प्राणों का मोह लिये
ढूँढ़ा करते जीवन-प्रकाश।
हो पदाक्रान्त, मानवता खो
उत्पीड़न सहते बने दास।

हे देव ! प्रकट हो दीनों को
फिर कर्म-ज्ञान-पथ दिखलाओ।
जकड़ी जननी का पाश काट
नव जीवन-ज्योति जगा जाओ।

कवि-श्रेष्ठ ! हमारा दोष भूल
दिखला दो फिर से चमत्कार,
जिससे भारत में राम-राज्य
संस्थापित हो फिर एक बार।

सुमन से

तुम प्रकृति-प्रिया के यौवन धन,
तुम पर विमुग्ध विधि का विधान।

अतिशय अतीत अभिलाष लिये
अभिशाप लिये उल्लास लिये।
तुम हो पराग के मंजु कोष,
सुषमा का प्रिय मृदु हास लिये।

करते जग को परिमल प्रदान।
तुम पर विमुग्ध विधि का विधान।

तुम अवनी के प्रदीप उज्ज्वल
तुम हो ऋतुपति के दूत प्रबल।
स्वर्णिम ऊषा के सुख-शृँगार
रमणी के मन-महीप निर्मल।

तुम रति-पति के धनु सुछविमान ।

तुम पर विमुग्ध विधि का विधान ।

तुम हो कवि की उपमान शक्ति
तुम 'मित्र' रश्मि के विमल भक्त ,
शुचि नन्दन-बन के मंजु मुकुट
तुम पर अलि है पूर्णानुरक्त ।

तुम दयावान, तुम हृदयवान् ।

तुम पर विमुग्ध विधि का विधान ।

तुम वियोगिनी के अरुण नयन
तुम सँयोगिनि के हृदय चयन ,
सुर सुन्दरियों के कोमल मन
कविता-रानी के सरस अयन ।

तुम चित्र-जगत् में दृश्यमान् ।

तुम पर विमुग्ध विधि का विधान ।

माली से

ग्रीषम की कठिन हुताशन की तापन से

लूह लपटों के बीच झुक-झुक झूले हैं।

शरद हेमन्त शिशरातप के बार-बार

वार सह ओस-बिन्दुओं से खेल ऊले हैं।

मातृ-चरणों पै बलिदान करने को 'मित्र'

सहज सनेह अपमान-मान भूले हैं।

माली सुई-शूल का दिखाना मत भूल भय

कंटकों की गोद में पले हैं और फूले हैं।

मनुज के प्रति

कण्टक गुलाब देख-देख इठलाता था जो
आज वही सामने पसारे हाथ आता है।
कैसी यह 'मित्र' भावना है ये मनुज तेरी
तेरे रोम-रोम बीच स्वार्थ ही दिखाता है।

शूल देख दूर भागता है नहीं आता पास
फूले हुए फूल देख-देख के लुभाता है।
जानता नहीं है दुख में ही तो छिपा है सुख
शूल सहता है जो वही तो फूल पाता है।

प्रभात १

पुण्य प्रभात में पक्षियों को

मृदु मोहन मन्त्र उचारते देखा।

गिरिराज को स्वर्णिम रश्मियों का

अपने सर ताज सम्हारते देखा।

तुहनावलि को सदा 'मित्र' के चित्र पै

जीवन की निधि वारते देखा।

कलियों को सदा अलियों के लिये

निज पंखुड़ियों को पसारते देखा।

प्रभात २

प्रिय प्राची वधू को समुत्सुक भाल पै
स्वर्ण सिन्दूर सुधारते देखा।
हिम-त्रास से पीड़ित पादपों को
अपना प्रिय अंग सम्हारते देखा।

वस्त्र विना कृषि-जीवियों को
नित शीत की भीति निबारते देखा।
कुसुमावलि को प्रणयासव के लिये
पंखड़ियों को पसारते देखा।

परिवर्त्तन

आज भिखारिन अलख जगा कर
वीरो, तुम्हें जगाने आई।
सदियों से सोये सिंहों को
विप्लव राग सुनाने आई।

अरे ! जाग उठ देख सृष्टि में
भीषण परिवर्तन होता है।
तू अंगड़ाई ले निद्रा में
सुख-शय्या पर ही सोता है।

पत्र-विहीन पादपों में शत–
शत नव अंकुर फूट पड़े हैं।
जिन्हें पराजित जग कहता था,
वह रण-आँगन बीच अड़े हैं।

जिसने मर-मिटना सीखा है
उसने सदा अमरता पाई।
आज भिखारिन अलख जगा कर
वीरो, तुम्हें जगाने आई।

मानवता का पशुबल द्वारा
गला घोंट शासक जीते हैं।
जबरन कर देकर किसान
धन-धान विना रहते रीते हैं।

अपने आँसू पी करके नित
सोती है किसान की बाला।
नित्य जलाया करती है
जठराग्नि हृदय अन्तर में ज्वाला।

जो अपना-अपना कहते हैं
उन पर ही अब बाज़ी आई।
आज भिखारिन अलख जगा कर
वीरो, तुम्हें जगाने आई।

खलिहानों के निबल तृणांकुर
उड़-उड़ तीखे तीर बनेंगे।
धन-पतियों के दुराधर्ष
दुर्गों को पल में धूल करेंगे।

इस बीहड़ भग्नावशेष में
फिर से आयेगी दीवाली।
सूखे-उजड़े वन-उपवन में
लहलहायगी फिर हरियाली।

सुख-स्वतंत्रता भोग करेंगे
मिल करके भाई से भाई।
आज भिखारिन अलख जगा कर
वीरो, तुम्हें जगाने आई।

आदेश

दुनिया में किसी की रही न सदा
इससे प्रिय प्रीति का पालना सीखो।
तन से मन से इस जीवन में,
मत 'मित्र' की बात का टालना सीखो।

कभी शत्रु के सामने सङ्कर में
कर से नहीं अस्त्र का डालना सीखो।
दुखियों के दुखाये हुए दिल पै
मत तीक्षण तीर का घालना सीखो।

विश्व-मंच

विश्व का मंच विचित्र बड़ा

यहाँ त्यागियों के लिये जाल हैं देखे ।

'मित्र' कहें सदाचारी दुखी

दुराचारियों को खुशहाल हैं देखे ।

पूरण पाप की मूर्तियों पै

महलों में पड़े हुए शाल हैं देखे ।

भूख की ज्वाल से रोते हुए

चिथड़ों मे छिपे हुए लाल हैं देखे

बेतवा

बेतवा १

धन्य-धन्य विमल बुन्देल की वसुन्धरा है

जहाँ बेतवा की यश धारा लहराती है!

तुङ्गारण्य तीर तुङ्ग तरल तरङ्गिनी की

बूँद-बूँद कोविद कवीन्द्र प्रगटाती है।

स्वर-लहरी के ताल-ताल में प्रवीनराय

'मित्र' रश्मियों के साथ थिरकत आती है।

स्वर्ण-दान धारा बन जाती वीरसिंह जू की

वही छत्रसाल का दुधारा बन जाती है।

बेतवा २ (करकरावल ग्रामका दृश्य)

एक गिरती है उठती है बेतवा की धार

प्रकृति-प्रिया का एक सदन सजाती है ।

'मित्र' किरणों से प्रिय करती कलोल एक,

साध स्वर सरस सुरीला राग गाती है ।

एक चन्द्रचूड़ के समोद लपटाती कण्ठ

लोल लहरा के मुख चूम-चूम जाती है ।

एक मोतियों का मंजु हार पहनाती एक

चन्दन चढ़ाती, एक चँवर डुलाती है ।

विधान

विश्व बीच विधि का विधान है बड़ा विचित्र
सत्य-पथगामी ठुकराये यहाँ जाते हैं।
'मित्र' गिरि-निर्झरों के शोभा सुख-धाम मृग
मोह-रूपी पाश में फँसाये यहाँ जाते हैं।

सरस रसाल फलराशि ले के झूमते जो
वज्र मार धरणि गिराये यहाँ जाते हैं।
प्रेम का पराग मधु हास ले के फूलते जो
वही फूल धूल में मिलाये यहाँ जाते हैं।

प्रेम का फल १

दिन-नाथ के प्रेम में पागल हो
मिली धूल में फूल की फूल-सी काया।
शुचि चन्द्र की चेरी चकोरिन ने
चढ़ चाह की चंग अँगार चबाया।

जलते परवाने हजारों रहे,
पर दीपक के दिल दर्द न आया।
दुख पाया सनेह किया जिसने
प्रिय 'मित्र' किसी ने नहीं सुख पाया।

प्रेम का फल २

इस निष्ठुर विश्व के अंचल में
किसी का दुख-दर्द न मानता कोई।
प्रिय 'मित्र' पिपासित चातकी की
नहीं वेदना को पहचानता कोई।

बलिदान हजारों पतंगे हुए
उनकी न प्रधानता आनता कोई।
सब शूल चुभाना ही जानते हैं
यहाँ फूल चढ़ाना न जानता कोई।

विधवा

लय हुई तमिस्रा अम्बर में
दिशि-दिशि में पीली पौ फूटी।
सज उषा सुन्दरी चली स्वर्ण—
घट लिये सींचने बन बूटी।

नव कलिका ने अँगड़ाई ले
खोले प्रिय अपने युगल नयन।
शैशव में स्वाभाविक होता
तन में अल्हड़पन, मृदु कम्पन।

विकसा नव रूप प्रभा फैली
प्रिय मधुर माधवी मुस्काई।
मारुत-रथ पर चढ़ मन्द-मन्द
तन अतनु जगाई तरुणाई।

परतन्त्र विवशता निर्ममता
मृदु पैरों में था पाश पड़ा,
जो इस निष्ठुर निर्दय घातक
मानव-समाज ने था जकड़ा।

बिन देखे अन्धी आँखो से
जग ने जीवन का मोल किया।
कुछ-कुछ दलाल खागये बीच
कुछ-कुछ माली के हाथ दिया।

देखी थी पहले हाट और
बाजार महल पीछे देखा।
मादक विलासिता में विलीन
अति जटिल प्रणय-बन्धन देखा।

थी कृष्ण पक्ष के क्षीण चन्द्र पर
विवश कुमुदिनी मुस्काई।
सुखसार रहित उस छद्म वेष
की मृदु माया में लपटाई।

इंगित पर हँसते-हँसते ही
यौवन-धन का बलिदान किया ।
दासी बन करके रही सदा
'रानी हूँ'--कब यह भान किया ।

नित चरण-चिन्ह पर चल करके
यौवन अरुणाभा अस्त हुई ।
भृकुटी पर नचती रही सदा
कब त्रस्त हुई, कब व्यस्त हुई ।

हा, किन्तु अमा थी निबिड़ निशा
का राज्य दशों दिशि में छाया ।
विधु नभ में हुआ विलीन
कुमुदिनी ने विधवा का पद पाया ।

कहने यों क्रूर समाज लगा
पापिन डायन हतभागिन तू ।
पति के अर्पण नहिं किये प्राण
कैसी उनकी अनुरागिन तू ।

नर का यह कुटिल विधान देख
अबला के दृग थे लाल हुए।
अमृत-वर्षी प्रिय मधुर अधर
क्षण में भुजंग विकराल हुए।

बोली, समाज की वेदी पर
जीवन-धन नष्ट किया अपना।
वह कठिन साधना शाप बनी
तप-त्याग हुआ मानो सपना।

पापिन हूँ मुझको प्रणय-रीति–
पालन में यह वरदान मिला।
नारी के प्रति नर के विधान का
कैसा यह अभिज्ञान मिला।

इन सभ्य शिष्टता वालों से
कैसा गौरव-सम्मान मिला।
शुचि स्वर्ण कलश में भरा गरल
प्रलयंकर-सा सामान मिला।

पुरुषों को पुर्नविवाह पुण्य
अबला को विधवा ही रहना।
पति व्यभिचारी अन्यायी हो
हो पूर्ण विवश दुख में बहना।

कहने का कुछ अधिकार नहीं
कारागृह बन्धन में दहना।
अनुचरी सदृश सब कार्य करो
पल-पल पर पदाघात सहना।

पंडितजी कहते भुजा उठा–
'नारी का मत विश्वास करो।
उसके भावों को भूल कभी
पति पाओ और न पास करो

समझो सदैव पद-त्राण सदृश
नर की चेरी होती नारी।
नर होता जग में सदा क्षम्य
नारी ताड़न की अधिकारी।

नर किन्तु हृदय को थाम जरा
मन के दर्पण को साफ करें।
खुद अपनी कार्य-हीनता का
कुछ समयोचित इन्साफ करें।

क्या भूल गई है सृष्टि चतुर
चतुरानन की वह पाप कथा,
सुरपति औ' विश्वामित्र आदि
ऋषियों की लिप्सामयी व्यथा ?

वृन्दा के साधन का खण्डन,
वह सती अहल्या का क्रन्दन।
है हृदय-विदारक सीता का
वह अग्नि-परीक्षा का बन्धन।

प्रियतम से प्रिया प्रियतमा को
कैसा प्रिय प्रेम-प्रदान मिला।
सर्वस्व निछावर करने पर
कैसा यह उच्चस्थान मिला।

लेकिन नारी होकर स्वतन्त्र
जब शक्ति-रूप धारण करती,
शंकर का डिम् डिम् डिम् निनाद
रुकता, कम्पित होती धरती।

कर अट्टहास ले चन्द्रहास
रणचण्डी है जब बन जाती,
भूमण्डल कम्पित होता है
जब प्रलय-गीत रण में गाती।

प्रासादों के खँडहर बनते
धँसते गिरि, सरिता रुक जाती।
नभ से गिरते झर-झर तारे
हिल जाती वसुधा की छाती।

नर-मुण्डमाल धारण करके
करती शोणित का सद्य पान।
नर की, नरपति की क्या गणना,
नचता चरणों पर विधि-विधान।

तिनके की कहानी

१

अपने लिये दूसरों का ही समस्त
मिटाते सदैव नहीं डरते हैं।
तन के मद में सदा फूले हुए
भ्रम भूले से भाँवरियाँ भरते हैं।
उनको न यहाँ, न वहाँ सुख है
जो न 'मित्र' की बातें हिये धरते हैं।
मुख पीला किये मुरझायँगे वे
जो बड़ी-चढ़ी बातें किया करते हैं।

२

सपने नही प्रेम के बुंद झरें
कहते मुख से हैं सदा कटु बानी,
धरते नही पैर सुमारग में
चलने की कुमारग में हठ ठानी।
प्रिय 'मित्र' की बात सुनें न गुनें
करते रहते अपनी मनमानी।
तन के मद में जो तने ही रहें
तिनके लिए है तिनके की कहानी।

२

प्रकटा प्रिय गोद वसुन्धरा की
जग के हित शीश उठाता हुआ ।
अपने उठते नव अंकुरों मे
अनुराग के पत्र खिलाता हुआ ।
करता अठखेलियाँ बेलियों से
प्रिय प्रेम के भाव दिखाता हुआ ।
बढ़ने लगा कोमल दो दलों को
बलिदान की सीख सिखाता हुआ ।

४

अपना प्रिय प्राण सहोदर मान के
बेलियों ने मन मोद मनाया।
जग-जीवन जीवनधारियों के हित,
दान भी जीवन का बहु पाया।

शुचि शीतल मन्द समीर ने प्रेम के
झोंके दिये झकझोर झुलाया।
अनुराग की पावन आश लिये
सब ने गुण गान किया दुलराया।

५

कुम्हला कहीं जावे न आतप से
सरिता मन में अकुलाने लगी।
अति उज्ज्वल भावनाओं से भरी
उमगी कल नाद सुनाने लगी।

नव बाल-विनोद की आश लिये
अनुराग के साज सजाने लगी।
तट आ के पसार के अंचल को
पय पावन पान कराने लगी।

६

पर भाग्य हुआ विपरीत सखे,
सुख में दुख के दिन आने लगे।
अपने प्रिय 'मित्र' बिराने हुए
थे सहायक पीठ दिखाने लगे।
सरिता तट से चली दूर गई,
खग-वृन्द भी व्यंग्य सुनाने लगे।
झकझोरने वायु लगी तन को
रवि भी किरणों से जलाने लगे।

७

पर साहस छोड़ा नहीं क्षण को
बढ़ता गया आगे हटा न ज़रा-सा ।
दुख से तन क्षीण किया ही भले
व्रत त्यागा नहीं, रहा सर्वदा प्यासा ।

बलिदान की भावनाओं से भरा
तपता रहा शान से तीव्र अवा-सा ।
कटके-छटके मिट ही गया किन्तु
मिटी नहीं सेवामयी अभिलाषा ।

८

अपने भर उज्ज्वल अंचल में

कुछ ले गई बेतवा की प्रिय धारा।

करने लहरों से लगा अठखेलियाँ

मोद में डूबा हुआ; नहीं न्यारा।

दिन में प्रिय 'मित्र' की रश्मियों से

चमका निशि में शशि-विम्ब के द्वारा।

व्रत सेवा का भूला नहीं क्षण को

बना डूबते को 'तिनके का सहारा।'

९

कुछ ले भर अंक समीर उड़ा
गिरिराज के शीश पै जाय चढ़ाया ।
कुछ ले खग डाल रसाल गये
निज बालकों के लिए गेह बनाया ।
कुछ ले दुखी दीन किसान गये
पशु-पालन-पोषण के हित आया ।
करके प्रिय प्राण निछावर यों
परमारथी जीवन का सुख पाया ।

मज़दूर

तपःपूत, ओ शील सिन्धु,
ओ सत्याग्रह के मंत्र।
महाकाल, ओ महाप्रलय,
ओ विप्लव के वर यंत्र।

तरुण तपस्वी, ओ त्यागी,
ओ शक्ति सँजीवन मूर,
इस निष्ठुर-निर्मम जग में
तुम कहलाते मज़दूर।

काँटों का सरताज सजा
प्रिय श्रम-कण श्यामल अंग।
भीषण ग्रीषम की लपटों से
छेड़ रहे हो जंग।

कितनी उत्कट अभिलाषा
औ' कितना अविचल ध्यान।
कितनी जीर्ण-शीर्ण काया
औ' कितना अटल विधान।

निबल करों पर लिये खड़े
तुम निखिल विश्व का भार।
तीन-तीन दिन के फ़ाके
यह पोषण का प्रतिकार।

खड़े तुम्हारे तप्त रक्त-
रञ्जित अनुपम प्रासाद।
छिड़ता जहाँ तुम्हारी रोटी—
पर ही वाद-विवाद।

तुम पर ही है अवलम्बित
इन नर-पतियों का जोश।
भरा नृशंसों का तुमने
निज पेट काट कर कोष।

अस्थि-मात्र रह गये अरे!
फिर भी हो निद्रा-ग्रस्त।
यह कल तुम्हें न कल देगी
तुम जिसमें रहते व्यस्त।

ओ ! सृष्टा, ओ शिव दधीच,
यह कैसा प्रत्युपकार
हुआ तुम्हारे शस्त्रों से
जलयाँ वाला संहार।

आँख खोल देखो सम्मुख
नित नाच रहे कंकाल।
विलख रहे लाखों भूखे
प्रिय भारत माँ के लाल।

जननी आह! कराह रही है
पड़ी पैर ज़ंजीर।
विलख-विलख हा, जगा रही
अब जागो भारतवीर।

उठो, वीर, नरसिंह करो
रण में भीषण हुंकार।
पल में जल-थल कण-कण में
हो उठे विजय-गुंजार।

डिग जायें दिग्पाल कमठ
'कलमलें' कराह फणीश।
झुके आन कर चरणों में
ताना-शाहों का शीश।

उथल-पुथल हो उठे महा
तुम ऐसा छेड़ो राग।
मिट जाये यह भारत का
दुख-दैन्य दासता दाग।

कोकिल से

१

कहने लगी ऊषा विनोद भरी

तरु-डाल पै कोकिल देख दिवानी।

सजनी कलियों को सुनाती रहीं

प्रिय तारिकाएँ निशि प्रेम-कहानी।

शशि की सुधासारमयी किरणें

हैं अभी-अभी तो पिला के गईं पानी।

मत देना जगा, पड़ी सो रही हैं

मृदु पल्लवों में ऋतुराज की रानी।

२

वन वासिनी 'मित्र' की रश्मियों से
नव लोचनों में भर ली अरुणाई।
जिसकी छबि देखते योगी-यती
उसकी छटा कैसे सुअंग ने पाई।

जब कूजती कानन में तू सुभाषिनी,
आ ऋतुराज है देता बधाई।
अपने मृदु मंजुल कण्ठ में कोकिले
लाई अरी कहाँ से मधुराई?

२

मद से ये छके हुए लोचनों से

दिल के छिपे भेद को खोल न देना।

सुख स्वर्ण की राशि भरी हुई का

तू कहीं किसी से कर मोल न देना।

अपने कल कण्ठ को साध अरी,

स्वर से तू कुहू-कुहू बोल न देना।

मधुरे ! अपनी प्रिय माधुरी का

कलियों में अभी मधु घोल न देना।

४

कर लेकर मंजु कमान मनोभव

कानन में नव सृष्टि रचेगा ।

प्रिय 'मित्र' की स्वर्णिम रश्मियों से

मृदु पल्लवों में वर चित्र खिचेगा ।

बहने लगेगी लिये गन्ध समीर

पराग पै भृङ्ग का युद्ध मचेगा ।

तब आम्र की डाल पै बोलना तू

जब आ कवियों पै वसंत नचेगा ।

५

मृदुभाषिनी मानी नहीं पल को
तू रसाल की डाल कुहू-कुहू बोली।
बहने लगी वायु सुगन्ध सनी
वह चौकड़ी भूली कुरंग की टोली।

कर में लिये गागरी मुग्ध खड़ी
तट पै युग याम से भामिनी भोली।
वह दौड़ी पराग को भृङ्गावली
कलियों ने सुमादक आँख है खोली।

हृदय धन से

जब तुम्हीं अपने नहीं हो
तब किसे अपना बनाऊँ।

जा रहा रवि रश्मियों का
हार ले सन्ध्या-सदन में।
प्रात के बिछुड़े विहग
व्याकुल मिलन की हैं लगन में।

निशा रानी से निशापति
आ रहा मिलने गगन में।
कुमुदिनी फूली समाती
है न अपन सुमन-मन में।

वेदना की ज्वाल से मैं
हूँ व्यथित किसको सुनाऊँ। जब—

चरण चिन्हों पर चली छाया
बनी सब साध खो कर।
आज मन से विलग क्यों,
तुम हो रहे हो एक होकर।

उठ रही घनघोर आँधी
तीव्र झंझावात बहता।
डगमगा तरणी रही है
बढ़ रही मन की विकलता।

धार में पतवार छूटा
पार मैं किस भाँति पाऊँ। जब—

नीं[1] के पत्थर

तर कर-कर वह हृदय रक्त से
जमा रहा था नीं के पत्थर।

घिर आई थीं विपति-घटायें।
वारि-बुन्द बरसाते जलधर।
बिजली तड़क-तड़क कर कम्पित—
किया चाहती थी उसका कर।

शोले ओले गिरे बदन पर
होता गया किन्तु वह दृढ़तर। तर कर-कर—

ग्रीषम की भीषण लपटों ने।
उसका दुर्बल गात जलाया।
अस्थि-मात्र रह गया किन्तु—
पथ से न किसी दम क़दम हटाया।

---

[1] बुन्देलखण्ड में 'नींव' को 'नीं' कहते हैं।

बढ़ता गया आत्म-बल दिन दिन
आतप विपदाओं में तप कर। तर कर कर—

"ओ मतवाले ! ठहर-ठहर, कुछ
तो सुन" ध्वनि यह पड़ी सुनाई।
मंथर गति से उठा शीश बोला—
"क्या कहते मेरे भाई ?"

निज कर्त्तव्य पूर्ण करने को
चलता रहा किन्तु उसका कर। तर कर कर—

"अरे श्रमिक, तेरे वियोग में
विकल प्रेयसी रुदन मचाती।
तेरी वह नन्ही-सी बिटिया
'बापू-बापू' कह चिल्लाती।"

तज शिशु का वह मधुर मोह
रमणी का तज कर प्रेम निरन्तर। तर कर कर—

"तेरी इस रक्ताभ ईंट पर
गगन-विचुम्बी महल उठेगा।
निर्मम दुनिया भूल जायगी
गुण-गौरव-सम्मान मिटेगा।

अथक परिश्रम कर कर मानव .
कष्ट सहन करता तू दुस्तर।" तर कर कर—

एक दीर्घ निश्वास साध कर
श्रम-कण पोंछ सजल दृग होकर।
खड़ा हुआ कंकाल चित्र-सा
हृद के अरमानों को खोकर।

बोला, "रे! लोलुप माया के,
मुझे सकेगा क्या विचलित कर।" तर कर कर—

"खड्ग धार से खेला करते
जग की सेवा करने वाले।
सदा अमर पद को पाते हैं
मातृभूमि पर मरने वाले।

नहीं स्वप्न में कर सकते,
उत्थान देश का कपटी-कायर।" तर कर कर—

"मेरी इस बलिदान-शिला पर
दीन राष्ट्र का दुर्ग उठेगा।
अरुण पताका फहराने को
पीड़ित शोषित वर्ग उठेगा।"

उन्नत भाल देश का करने
लिये हथेली पर अपना सर। तर कर कर—

बंगाल

जागो सूर सुभट रणधीरो,
भय निद्रा मद त्याग।
जागो भारत माँ के गौरव,
निर्बल जन के भाग।

जागो सतत शहीदों के प्रिय
प्रलयंकारी राग।
जागो सतियों के सदियों से
सोये हुए सुहाग।

जाग विश्व-कवि श्री कवीन्द्र के
कलित कल्पना भाव।
ज्वाल-माल पानी कर दे यह,
भर दे प्रबल प्रभाव।

जाग्रत हो चैतन्य महाप्रभु
राम कृष्ण के तेज।
आज तुम्हारी बंग भूमि
बन गया मृत्यु की सेज।

धनपति विहँस-विहँस देते हैं
निर्धन जन को त्रास।
अस्थि-पञ्जरित देह हुई है
शेष रह गई साँस।

विलख रही हैं जननी इत-उत
तड़प रहे हैं लाल।
क्षुधित इधर हैं, जनक उधर हैं
तृषित बन्धु बेहाल।

दाने-दाने में बिकती है
नव वधुओं की लाज।
फिर भी भारत समझ न पाया
क्या है इसका राज़।

जिसके रक्तदान से रञ्जित
रंग-महल का द्वार।
उसको वही कुबेर न देता
मुट्ठी-भर भी ज्वार।

हाय, आज मानव करता है
मानव का उपहास !
मानवता का फिर मानव को
कैसे हो विश्वास ?

प्राणान्तक सह कष्ट माँगता
पुरुष प्राण का दान
फिर भी कुछ परवाह न करते
नरपति प्रभुता वान ।

मृतकों के नयनों में भूलें
नित नृशंस के वंश ।
चिथड़ों को भी खींच रहे हैं
दुश्शासन के अंश ।

फ़ुट-पाथों पर ऊर्ध्व श्वाँस
भरता है नर-कंकाल ।
तप्त हृदय से निकल रही है
महा भूख की ज्वाल ।

क्या है नहीं नरों की गणना
में इनका अनुमान ?
क्यों इनके प्राणों की होली
खेल रहे धनवान् ?

जागो वीरो ! प्रिय भारत की ,
करुण कथा सुन आज ।
बलिवेदी पर बलि दे रख लो
मा मातृ-भूमि की लाज ।

मानव के प्रति

अब युग-युग को सोती हूँ
हे मानव ! मुझको नहीं जगाना।

तेरा यह दासत्व नष्ट
करने को मैंने जन्म लिया था।
जीवन अमर बनाने को
मैंने हँस-हँस विष पान किया था।

व्यस्त रहे आलस-मद में पर
निज कर्त्तव्य नहीं पहचाना। अब—

किया आमरण व्रत मैंने
निर्जला रही शूली पर सोई।
ज्वालाओं से खेल-खेल
नित अश्रुधार से काया धोई।

किन्तु स्वार्थ से रँगा हुआ
पट तुमने निज पलकों पर ताना । अब—

तेरा दारुण दुःख मिटाने
में रण-आँगन बीच अड़ी थी ।
हिम-किरीट पर वज्रपात
करने को सम्मुख आन खड़ी थी ।

हाय, किया धारण तुमने,
यह क्रूर कुटिल कायर का बाना । अब—

प्रिय बन्धुत्व मिटा तुमने
क्यों देश-बन्धु का गला दबाया ।
मातृ-भूमि परतन्त्र बना
मग में काँटों का जाल बिछाया ।

त्याग स्वतन्त्र विचार तुम्हें,
प्रिय लगा देश-द्रोही कहलाना । अब—

रामायण के ही द्वारा
शुभ तुलसी का सन्देश दिया था ।
मोहन के द्वारा तुमको
शुचि गीता का उपदेश किया था ।

बापू, तिलक, जवाहर का
है तुमने किंचित कहा न माना । अब--

तुमने मन्दिर मस्जिद पर
अपने भाई का ख़ून बहाया ।
क्या क़ुरान देखा तुमने
औ' क्या पुराण में तुमने पाया ?

लोलुपता--मय लक्ष्य-लक्ष्य
कर तुमने राम-रहीम न जाना । अब--

बन स्वरूप रानी मैंने
हा, कितने मोती लाल लुटाये ?
भरे हुए अरमान मिटा
बहु सुख-सौरभ धन-माल लुटाये ।

किन्तु छेड़ते रहे सदा,
तुम वही ग़ुलामी भरा तराना । अब--

बुन्देलखण्ड १

बिन्ध्य का अपूर्व तेज तमक रहा था दिव्य ,

वीर छत्रसाल का प्रदीप्त भव्य भाल था ।

चमक रहा था पल्लवों में स्वर्ण हास भरा

किंसुक प्रसूनों का प्रभाव डाल-डाल था ।

बेतवा, धसान, सिन्ध, चम्बल, पहूज, सौन,

क्वाँरी, नर्मदा, का उर्मिला, का बिछा जाल था ।

'मित्र' देख प्रकृति पुरन्दरी लालायित थी

नृपति यहाँ का सुरपति-सा निहाल था ।

बुन्देलखण्ड २

हीरक की यहीं खान प्रसिद्ध है

लोह में दीखता है यहीं पानी।

दान में पुण्य प्रमाण अमान-सा,

'वीर नृसिंग'-सा कौन है दानी।

'मित्र' जगी कविता की कला यहीं

है तुलसी ने सजी वर वानी।

राघव शान्ति की ये पग-दण्डिका

चण्डिका थी यहीं लक्ष्मी रानी।

मंदाकिनी

कौन-कौन सुगुण मं गिनाऊँ मन्दाकिनी के

योगियों को ज्ञान का विराट बाट देती है

सुमति शिरोमणि सुडाल गले हार मंजु

कुमति 'छिपोनियों'[1] की माला छाँट देती है ।

राम-रस देकर अमोघ शक्ति देती 'मित्र'

दे के शिव-भक्ति शोक-सिन्धु पाट देती है ।

पुण्यप्रद भव्य भूरि भावना के जागते ही

दुख का पहाड़ पल मध्य काट देती है ।

---

[1] नक़ल मोती

सरसी (बँदिया)

वह प्रिय प्रभात की वेला थी
श्यामा कहती थी मधुर छन्द ।
था नव वसन्त का शुभागमन
बहती समीर थी मन्द-मन्द ।

प्राची बाला गोदी में ले
प्रिय अरुण बाल मुस्काई थी,
जिसकी सुषमा पर मोहित हो
कलियों ने आँख उठाई थी ।

दिशि विहँस उठी अरुणाभा से
सरसी का जल भी चमक उठा ।
पत्थर-पत्थर, रज का कण-कण
किरणों से स्वर्णिम दमक उठा ।

स्वतंत्रता की देवी

महारानी लक्ष्मीबाई

त्रयशूल हरण मानो त्रिशूल
दूर्वा तट पर लहलहा उठी।
शंका हरने शंखाहूली
सौरभ की सुरसरि बहा उठी।

स्वागत् करने वर वीरों का
तरुवर पलाश के हुए लाल।
मानो कहते थे वीरों से
रखना स्वदेश का उच्च भाल।

तब तक दक्षिण से उड़ी धूल
औ' अश्व टाप गुंजार उठी।
गुंजार मनों महरानी की
सुखप्रद वर विजय पुकार उठी।

ठिठका तुरंग उतरी रानी
अपनी झाँसी का ध्यान किया।
सादर कर सरसी को प्रणाम
कैमासिनि[1] का आह्वान किया।

बोली दृढ़ हो गम्भीर वचन
"मेरी झाँसी, मेरा स्वदेश
मेरा तन-मन-धन कण-कण पर
अर्पण होगा यह वीर वेष।"

तर्पण कर रानी उठी इधर
उत लगा वैरियों को सुराग।
हिम्मत कर सत्वर सैन सजी
फिर से रणचण्डी उठी जाग।

---

[1] **कामाक्षा देवी**

डट गया मोरचा बँदिया[1] पर
चमकी रानी की चन्द्रहास।
दमकी दामिनि-सी कुछ क्षण को
दे गइ सहस्र को स्वर्गवास।

लक्ष्मी-स्वरूप भैरवी हुआ
कुल का स्वदेश का भान किया।
कर कमलों ने रणचण्डी को
मानो शोणित का दान किया।

फिर तमका तेज तीव्र भाला
सरदारों के सर छाँट-छाँट।
पहनाई चण्डी को माला
रुण्डों से पुल को दिया पाट।

अरियों की शोणित-धारा से
सरसी का जल हो गया लाल।
चल दी घोड़े पर चढ़ रानी
माँ-सी झाँसी को झुका भाल।

---

[1] तलैया विशेष

धसान

मौन तपस्वी बने खड़े हैं–

गिरि-शृंग किये कर छत्र सहारा।

आपस में मिलने का पढ़ा रहीं

बेलियाँ प्रेम का पाठ है प्यारा।

पल्लवों में लिख 'मित्र' रहे

शुचि स्वर्णिम है इतिहास हमारा।

आज यहाँ पै विलासिता को

धसने नहिं देती धसान की धारा।

धसान की धारा

सुखनै,[1] सुख दे हुलसाती हमें
पयपान करा रही बेतवा प्यारा ।
प्रिय 'मित्र' सुना कल गान रही है
सतार सितार के तार के द्वारा ।

कर केन कलोल कला विकला
सिखला रही है कला कौशल सारा ।
दुख द्वन्द्व विपत्तियाँ काटने को
बनती असि धार धसान की धारा ।

---

[1] 'सुखनई' नदी विशेष

पहूज

कूलन फूल पलास रहे यहाँ

साध समाधि रहे मुनि ज्ञानी।

पावन अंचल में अनगौरी,[1]

रही खुल खेल विनोद भुलानी।

'मित्र' प्रसिद्ध दशों दिशि में

यहाँ ब्रह्म जू, देव महा वरदानी।

कंचन काया मिली उसी को

जिसने पिया पुण्य पहूज का पानी।

---

[1] नदी विशेष

केन

नाच रहीं गिरिराज के संग
उमंग में बाहें भरें गले डारें।
कानन में कलनाद की मानहुँ
गूँजें सुनूपुरों की झनकारें।

मोद मना रहे डालियों में चहुँ
ओर विहंग हैं वैर विसारें।
खण्ड बुँदेल में रत्न लुटा रहीं
केलि-कला कर केन की धारें।

सातार

कलरव करती अविरल गति से
बहती है निर्मल सातार।
गूँज रही है स्वर लहरी में
वीरों की मादक झंकार।

स्वर्ण रश्मियाँ छत्रसाल का
लहरों पर लिखतीं इतिहास।
लक्ष्मीबाई का प्रतिविम्बित
होता जल में पुण्य प्रकाश।

कहीं-कहीं उथले जल में
वह लगे हुए झाऊ के पेड़।
हिल्लोलित लहरों से प्रेरित
लघु तिनकों को देते छेड़।

सीधे सरल सहरियों[1] के
जल-क्रीड़ा करते बालक-वृन्द ।
दियें कछोटा बालाएँ घट
भरने आतीं नीर अमन्द ।

तट निकुंज में सरस सुरीली
मृदुल मधुमयी कोकिल तान ।
चहुँ दिशि प्रिय पलास-पुष्पों की
विकसी सोने-सी मुस्कान ।

चारों दिशि फूले सरसों के
खेतों की मृदु तरल तरंग ।
उछल-उछल कर जहाँ छलाँगें
भरते हैं शुचि स्वर्ण कुरंग ।

गिरि पर शंखाहूली फूली
रत्नज्योति, मुस्काती दिव्य ।
हरि-शृँगार से राधा-कान्ता,
हर्षाती लपटाती भव्य ।

---

[1] जंगली जातियाँ

महावीर विक्रमशाली का
तट समीप पावन सुस्थान।
झूम रहा है गगन-विचुम्बी
ऊपर जिसके लाल निशान।

'मित्र' चन्द्रशेखर[1] डमरू का
होता है डिम् डिम् डिम् नाद।
सिंह सपूत जागते हैं नित
कायर करते हृदय विषाद।

---

[1] क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आज़ाद ने यहीं अज्ञात वास किया था—

सिन्ध (सेवड़ा)

१

एक ओर प्रकृति-पुरन्दरी सुसज्जित हो
सुमन-दलों के दल कोमल खिलाती थी।
एक ओर अचल अभेद्य दुर्ग द्वार 'मित्र'
वीर क्षत्रजीत की पताका फहराती थी।

एक ओर 'पीरू'[1] की पराजित भुजा थी पड़ी
कुंठित हो लुंठित धरा में धूल खाती थी।
एक ओर सिन्ध, सनकादि पाद-पंकजों में
बलि-बलि जाती यश गाती लहराती थी।

---

[1] पीरू एक राजा था, जिसने सेवड़ा पर चढ़ाई की थी और जो क्षत्रजीत महाराज द्वारा मारा गया था।

२

कानन में सोते हुए सिंहों को जगाती हुई

भूधर भुजाओं में लपेटे चली आती है।

प्रकृति प्रिया का 'मित्र' करने शृँगार मंजु

स्वर्ण रश्मियों को उर भेंटे चली आती है।

सुमन दलों के दल कोमल खिलाती हुई

क्रूर कोही कण्टक दपेटे चली आती है।

सुयश प्रसारने बुन्देलखण्ड का ये सिन्ध,

अंचल में सुषमा समेटे चली आती है।

३

आसन हिलाती हुई बड़े-बड़े पर्वतों का
गर्जना से दिल दहलाती चली आती है।
काँकेर, करील, करधई हुलसाती हुई
कलित करोंदी को खिलाती चली आती है।

'मित्र' हृद-अंचल अमोल रत्न-राशि लिये
बन-उपवन में लुटाती चली आती है।
पद अरविन्द सनकादि के पखारने को
सेंवड़े में सिन्ध लहराती चली आती है।

४

सुखद स्वतन्त्र करने को ये बुन्देलखण्ड
बेतवा ने पावन प्रतिज्ञा पूर्ण पाली थी।

सबज सुरंग सजा केन ने तुरंग 'मित्र'
चम्बल ने चमू चतुरंगिनी सम्हाली थी।

गूँजती धसान की धुकार ध्वनि धोंसा देत
नर्मदा ने बाँध दी भुजाओं में भुजाली थी।

वैरियों का गर्व सर्व खर्ब करने के लिए
मन्थन कर सिन्ध वीर लक्ष्मी निकाली थी।

सिन्ध (शरद्)

सिन्ध सलिल में रजत रश्मियाँ

शशि की खेला करतीं आन।

नील गगन से तारावलियाँ

सहराती झुक-झुक प्रिय प्राण।

द्रुम-दल से धाराएँ छन-छन

हर्षाती आतीं सुख-पुंज।

मनों बिन्दुओं की मालाएँ

पहनाती रहतीं मृदु मंजु।

लहर-लहर लहरें भरती हैं

कल कमोदिनी में उद्गार।

तटवर्ती प्रिय हरित दूर्वा

सिखलाती करना मृदु प्यार।

प्रिय चकोरिकाएँ देती हैं
प्रीति-रीति का शुभ सन्देश।
करना सहज निभाना दुस्तर
प्रेम नेम का कठिन प्रदेश।

कूल कुंज से विजन डुलाती
बहती आती मन्द बयार।
रजनीगन्धा, रजनीरानी का
करती है शुचि शृंगार।

हिम अम्बर धारण कर सरिता
कल-कल स्वर में करती गान।
वन-वन में विचरण कर देती
जग-जीवन को जीवन-दान।

सरिता-प्रभाव

बेड़ी काट देती है बबेड़ी की प्रखर धार

तीव्र यमदाड़ जमड़ार[1] दर देती है।

'मित्र' कहैं प्रबल प्रचण्ड नर्मदा की धार

फूले पाप-पुंज के उखाड़ तरु देती है।

दुर्मति दुरूह दुर्ग खेंड़र, खँड़ेर करै

स्वर्ण सुखसार सुखनई, भर देती है।

सिन्ध, सिन्धुजा की शुचि सम्पति अपार देती,

पारवती,[1] शंकर समान कर देती है।

---

[1] नदियों के नाम

कवि से—

कवि कलित कल कल्पना का
भार लेकर क्या करोगे।

अप्रभ अस्तप्राय से प्रणवीर
यह दिखला रहे हैं।
आत्म-गौरव त्याग कर
व्रत श्वान का सिखला रहे हैं।
व्यथित है जग वेदना से
मानसिक अवहेलना से।
डगमगा तरणी रही है
वायु दूषित प्रेरणा से।

व्यंग्य आत्म-प्रवञ्चना
अभिसार लेकर क्या करोगे। कवि—

खो दिया सम्मान अपना
'राय', 'सर' की पहन माला।
लगा दुर्बल दासता का
देश-भाल कलंक काला।

स्नेह-निधि को देश के
इस गृह-कलह ने सुखा डाला।
पड़ गया विकसित कमल पर
वर्ण-भेद तुषार-जाला।

क्षीण रवि की रश्मि का
आधार लेकर क्या करोगे। कवि—

पुरुष ने पुरुषत्व खोया
दासता स्वीकार करके।
नरों ने नरता गँवाई,
पामरों का वेष धर के।

पूर्व पुरुषों का पराक्रम
धूल में हँस-हँस मिलाया।
वैरियों के चरण-चिन्हों पर
चलन हिय में समाया।

एक मोहन, मुरलि का स्वर–
सार लेकर क्या करोगे। कवि---

'मित्र' मुरली सप्त स्वर में
एकता स्वर फूँक देगी।
एक पल में फूट पापिन का
हृदय कर टूक देगी।

दासता का ह्रास होगा
शान्ति-सौख्य स्वराज्य होगा।
क्रूर कुटिल कुचक्रियों का
फिर न छद्म-समाज होगा।

फिर कहोगे भावना का
हार लेकर क्या करोगे। कवि---

युवक

युग-युग से नचता आया है
इङ्गित तेरे पर विधि-विधान ।

निर्बल जनता के जीवन-धन
तुम हो महान, तुम हो महान ।

तुम प्रकृति-प्रिया के मंजु मुकुट
तुम स्वर्ण उषा की रत्न-राशि ।
तुम सुमन-जगत् के प्रिय परिमल
मुकुलित कलिका के मृदुल हास ।

तुम हिम-कण मुक्ता रूपवान
तुम हो महान, तुम हो महान ।

तुम आदि सृष्टि के सृजनहार
तुम महाप्रलय की महा ज्वाल ,
कविता रानी के सुख-शृँगार
भारत माँ के गौरव विशाल ।

तुम शील सिन्धु, तुम शक्तिमान्
तुम हो महान, तुम हो महान ।

तुम कवि, रवि, शशि, विद्या-विनोद
तुम राम, कृष्ण, बलि, परशुराम ।
तुम हो प्रताप के तेज पुंज
तुम छत्र शिवाजी-से ललाम ।

लक्ष्मीबाई की उच्च शान ।
तुम हो महान, तुम हो महान ।

तुम हो मोहन-से शान्त व्रती
तुम वीर जवाहर सेनानी ।
हँसते-हँसते करते सदैव
सुन्दर स्वदेश पर क़ुर्बानी ।

तुम कृषकों के प्रिय पुण्य प्राण
तुम हो महान, तुम हो महान ।